- द्वितीय अध्याय -

- भैरवप्रसाद गुप्त - व्यक्तित्व एवं कृतित्व -

द्वितीय अध्याय

भैरवप्रसाद गुप्त - व्यक्तित्व एवं कृतित्व

भैरवप्रसाद गुप्त जी का स्थान हिन्दी उपन्यास साहित्य में एक प्रगतिशील उपन्यास लेखक के रूप में अग्रणी है। वे जीवन के प्रत्येक क्षण में हमेशा संघर्षरत रहे हैं। उन्होंने आभावग्रस्त जिन्दगी का साहस के साथ मुकाबला किया है। एक उदार सहृदयी और हसमुख व्यक्तित्व के रूप में वे हमारे सामने आते हैं। आज भी वे शोषण और अन्याय के खिलाफ संगठित शक्ति के माध्यम से संघर्ष करने का दिशा-दिग्दर्शन कर रहे हैं।

गुप्त जी ने अपने जीवन के बारे में स्वयं कुछ नहीं लिखा है। अन्य साहित्यकारों ने भी उनके जीवन को प्रकाश में लाने का काम अधिक मात्रा में नहीं किया है। उनके साहित्यिक मित्र भी उनके जीवन से अपरिचित रहे हैं। ऐसी स्थिति में उनके जीवनवृत्त संबंधी जानकारी स्वयं उनके साक्षात्कार से ही एकत्र की जा सकती है। भैरवप्रसाद गुप्त जी के उपन्यासों के नायक वास्तव में उनके ही व्यक्तित्व का ही वहन करते हैं। यहाँ हम भैरवप्रसाद गुप्त जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का एक संक्षिप्त आलेख प्रस्तुत करना चाहते हैं जिसके आधार पर उनका जीवनविश्व पाठकों के सामने उभरकर आ सकता है।

जन्मतिथि एवं बचपन :-

भैरवप्रसाद जी का जन्म 7 जुलाई 1918 ईसवीं को "सीवान" में हुआ। बचपन में गाँव के नजदीक के एक तालाब के किनारे भैरवप्रसाद जी अपने हमजोलियों से खेलते-कुदते थे। गुप्त जी ने तालाब का वर्णन अपने उपन्यास "धरती" में किया है। इन्हीं दिनों गुप्त जी के लिए मनोरंजन का एकमात्र साधन यह तालाब रहा।

कबड्डी, गुल्ली-डंडा आदि गुप्त जी के बचपन के प्रिय खेल थे। इन्हीं दिनों गुप्त जी के गाँव में वर्ग वैषम्य की भयंकर दीवारें खडी थी। इसीसे अनेक से अन्याय और अत्याचार गरीब और दुर्बल लोगों पर हुआ करते थे। इस वर्ग-वैषम्य का प्रभाव बचपन से ही उनके मनपर हावी हो गया था और

तभी से गुप्त जी के मन में वैषम्य के प्रति विद्रोह पनपने लगा था।

शिक्षा-दीक्षा :-

"उन्हें बचपन में महाजनी पाठशाला में व्यापारी हिसाब-किताब सीखना पडा। इस पढाई से लेखक का गणित मजबूत हुआ। इसके बाद उन्होंने इस्लामिया स्कूल में फारसी और उर्दू पढी। उनके आर्यसमाजी चाचा ने, लेखक की इच्छा के विरूध्द उन्हें इस्लामिया स्कूल से निकालकर प्रायमरी स्कूल में बिठलाया। अच्छे विद्यार्थी होने के कारण उन्हें दो रूपया मासिक वजीफा मिलता था।"[1]

भैरव जी के गाँव में उन्ही दिनों जिला स्कूल बोर्ड का एक प्रायमरी स्कूल था और वहाँ चौथी कक्षा तक ही स्कूली शिक्षा का प्रबंध था। वहाँ की शिक्षा-दीक्षा पूरी करने के बाद भैरव जी सिकंदरपुर के वर्नाक्यूलर मिडिल स्कूल में प्रविष्ठ हुअे वहाँ मिडिल तक की शिक्षा-दीक्षा प्राप्त की। गुप्त जी आठवी कक्षा में पिकेटींग करने के अपराध में तीन दिन के लिए जेल गये थे। इंटर की कक्षा में जब वे पढतेथे तब वे तीन महिनों तक अपने ही गाँव में नजरबंद थे। एक पुलिस दिन रात उनके मकान पर पहरा दे रहा था। गर्व्हनमेंट हायस्कूल बलिया से उन्होंने सन् 1935 में हायस्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण की।

बलिया में अगली पढाई की सुविधा न होने के कारण गुप्त जी इलाहाबाद गये और वहाँ इरबिन क्रिश्चियन कालेज में दाखिल हुअे। वे अपने बालसखा एनुद्दीन के साथ इलाहाबाद गये। भैरवप्रसाद गुप्त जी ने "सती मैया का चौरा" में इसी कालेज के वातावरण का उल्लेख किया है। एन्नुद्दीन गुप्त जी के आगे दो दर्जे थे फिर भी एक वर्ष वे अनुत्तीर्ण हुअे और अब वे साथ-साथ एक ही कक्षा में पढते रहे। उन्हीं दिनों कालेज के सभी छात्र एन्नुद्दीन को "प्रेमी" नाम से पुकारते थे।

सन 1937 में हिन्दी, अंग्रेजी तथा अर्थशास्त्र विषयों के साथ-साथ भैरव जी ने इंटरमिडियट की परीक्षा उत्तीर्ण की। आगे चलकर प्रयाग विश्वविद्यालय से सन् 1939 में उन्होंने बी.ए. की उपाधि हासिल की। एम.ए. में प्रवेश लिया परंतु गिरफदार हो जाने के कारण पढाई छूट गयी। इस समय शिवदानसिंह चौहान, जगदीशचन्द्र माथुर, गंगाप्रसाद पाण्डेय जी उनके सहपाठी थे जो आज साहित्य के क्षेत्र में अग्रणी माने जाते हैं।

हिन्दी प्रचार-प्रसार का कार्य :-

बी.ए. की उपाधि प्राप्ति के बाद श्री राजगोपालचारी भैरव जी को हिन्दी प्रचार और प्रसार के लिए मद्रास ले गये। "सती मैया का चौरा" में मुन्नी के माध्यम से इस बात पर प्रकाश डाला है जैसे, "वह मद्रास चला गया है। वह गरीब घर का लडका है लेकिन उसे मालूम नहीं था कि वह गरीब घर का लडका है। वह सोचता था कि उसकी पढाई चलती रहेगी लेकिन उसने आगे पढने के लिए कहा तो उसके पिताजी ने सब स्थिति खोलकर रख दी और कहा - "बेटा, अब हमारी स्थिति ऐसी नहीं कि

तुम्हारी आगे की पढाई का इन्तजाम कर सके। अब तुम कुछ करो-धरो, कोई नौकरी ही कर लो और हमारी कुछ मदद करो।"[2] आर्थिक अभाव और उत्तरदायित्व के भार ने गुप्त जी को जकड रखा था।

गुप्त जी ने सन 1939 से 1942 तक हिन्दी प्रचारक की हैसियत से दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा में कार्य किया। वहाँ उन्होंने हिन्दी प्रचारक महाविद्यालयों में ही अध्यापन का कार्य किया इतना ही नहीं कई मुहल्लों में और क्लबों में जाकर हिन्दी की कक्षाएँ चलाई। त्रिचन्नापल्ली रेडिओ स्टेशन से "लेसन्स हिन्दुस्थानी" कार्यक्रम चलाया। इतना ही नहीं उन्होंने राजगोपालचारी को उर्दू सिखाई और कई नेताओं को हिन्दी सिखाई।

वैवाहिक जीवन :-

सन् 1940 में भैरव जी का विवाह हुआ। उनकी पत्नी बलिया के एक लब्ध प्रतिष्ठित व्यवसायी श्री छोटेलाल की पुत्री थी, जिसका नाम "प्रेमकला" था। सन 1942 के अंदोलन के पश्चात उनके भाई राधाकृष्ण गुप्त के भूमिगत होने के उपरांत उनके परिवार पर अंग्रेज सरकार के अन्याय और अत्याचार बढने लगे। इन्हीं दिनों भैरव जी त्रिचनापल्ली में थे। उनका सारा परिवार बिखर गया था, टूट गया था। पुलिस टुकडी ने उनके घर को घिराव डाला था और घर पर एक नोटीस लगवा दी थी कि अगर पंद्रह दिन के अंदर राधाकृष्ण हाजिर नहीं हुआ तो मकान कुर्क कर दिया जाएगा। माता-पिता और बडे भाई ने इस डर से बहुओं को साथ लेकर हर्सदया के मंदीर में आश्रय लिया था। घर में केवल नौकरानी रह गयी थी जिसपर पुलिस बार-बार जुल्म जताती थी। इन्हीं दिनों गुप्त जी की पत्नी गर्भवती थी। राधाकृष्ण के हाजिर न होने के बाद अंग्रेज पुलिसों ने उनका मकान निलाम कर दिया। उस समय एन्नुदीन ने जो गाँव के जमींदार थे, अपने प्रभाव से काम किया और उन्होंने मकान को नीलामी में खरीद लिया। सन 1944 में स्वतंत्रता संग्राम की स्थिति सामान्य होने पर राधाकृष्ण जी कचहरी में हाजिर हुअे और पूरा परिवार गाँव लौट आया। एनुदीन ने भैरव जी के परिवार को फिर मकान सुपूर्द किया। इसके उपरांत भैरव जी के परिवार पर अनेक सी आपत्तियाँ आ टपकी। गुप्त जी के पत्नी ने एक पुत्र को जन्म दिया और वह यक्ष्मा का शिकार हो गयी।

सन 1945 में उनकी प्रिय पत्नी प्रेमकला की मृत्यु उन्होंने प्रथम बार ही आँखों से देखी थी परिणामतः प्रिय पत्नी की मृत्यु के आघात से वे विक्षिप्त हो गये। बनारस में गंगाजी में फूल विसर्जित करने के पश्चात वे रेल स्टेशन पर आकर प्लेट-फार्म पर टहलने लगे थे। फिर बुक-स्टाल पर आकर उन्होंने किताबें देखी और इनमें से गोर्की का उपन्यास "मदर" खरीदा और बेंचपर बैठे-बैठे पढने लगे। इस उपन्यास से उन्हें जीवन की एक नई रौषनी मिली। तत्पश्चात उन्होंने मार्क्स, लेनीन, एंगल्स तथा स्तालिन की रचनाओं का अध्ययन प्रारंभ किया इससे इनके जिन्दगी को एक नया मोड मिला।

माता-पिता के आग्रह के खातीर भैरव जी ने सन 1948 में छपरा जिले के दरौली कसबे

के निवासी राम जी की पुत्री "बैजनाथीदेवी" से दूसरा विवाह किया। इनसे गुप्त जी की दो संतानें हुअी। बडी संतान का नाम जयप्रकाश और छोटी का नाम कविता रहा। जयप्रकाश जी को परिवार के लोग बाबु और कविता को मुन्नी कहकर पुकारते हैं। दोनों भी अत्यंत मृदु, निष्कपट और साधु स्वभाव के हैं। वे सामान्य जीवनयापन करते हुअे भी अत्यंतिक संतुष्ट हैं। अपने पिता के स्वाभिमान तथा आदर्श का पालन करते आ रहे हैं।

इसके बाद उनके बडे भैया श्रीकृष्णप्रसाद भी संग्रहिणी के शिकार हो गये। इन आपत्तियों के आघात से गुप्त जी के माता-पिता व्यथित हुअे। राधाकृष्ण को सरकार का तखता पलटने और पुलिस थाने में आग लगाने के जुर्म में बलिया के सत्र न्यायालय ने दस वर्ष के कारावास की सजा दी। सितंबर 1942 में गुप्त जी त्रिचनापल्ली से माता-पिता जी के पास आकर पहुँचे परंतु माता पिता ने उन्हें एक दिन भी अपने पास रहने नहीं दिया क्योंकि उन्हें भय था कि पुलिस उनके बेटे को पकड लेगी। अब गुप्त जी ने त्रिचनापल्ली लौट जाने का इरादा बदल दिया। परिवार को ऐसी भयंकर हालत में छोडकर इतनी दूरी पर जाना उन्होंने मुनासिब नहीं समझा और वे कानपुर चले गये। कानपुर में भैरव जी का संपर्क सुप्रसिध्द मजदूर नेता अर्जुन अरोडा से आया। अर्जुन अरोडा के आश्रय में इन्हीं दिनों अनेक भूमिगत कांग्रेसी रहते थे। अर्जुन अरोडा की कृपा से गुप्त जी को सी.ओ.डी. में एक अस्थाई नौकरी मिल गई। इससे स्पष्ट होता है कि उनका जीवन संघर्षमयी तथा अत्यंतिक प्रतिकूल रहा।

साहित्य-सृजन :-

इन्हीं दिनों गुप्त जी की एक कविता "लोकयुध्द" में प्रकाशित हुअी और उस कविता की सराहना भी बहुत हुई। वह कविता थी - "जग की जगी लाल किरण"। गुप्त जी को अर्जुन अरोडा की कृपा से मिली सैनिकी नौकरी अच्छी नहीं लगी और तीन महिनों के उपरांत उन्होंने ये नौकरी छोड दी। अब वे "विशाल भारत", "विश्वामित्र", "चाँद" आदि पत्रिकाओं में लगातार कहानियाँ और कविताएँ लिखने लगे। जून 1944 में उन्हें इलाहाबाद से प्रकाशित "माया" नामक पत्रिका में संपादन विभाग में काम करने का मौका मिला। इस हालत में वे बेस्ट सदर लैण्ड की स्थायी नौकरी का इस्तिफा देकर इलाहाबाद आ पहुँचे। अब उन्हें अपनी रूचि का पत्रकारिता का क्षेत्र मिल चुका था।

लेखक, पत्रकार और संपादक के रूप में गुप्त जी ने हिन्दी साहित्य शारदा की सेवा की है। इतना ही नहीं सुदूर दक्षिण में जाकर हिन्दी भाषा का प्रचार और प्रसार भी किया है। दक्षिण के लोगों में हिन्दी भाषा के प्रति रूचि और लगन का भी निर्माण उन्होंने किया। राजनीति के क्षेत्र में छात्र जीवन के बाद सक्रिय नहीं रहे परंतु लेखकों को संगठित करने का काम उन्होंने काफी मात्रा में किया। स्पष्ट है कि इन्होंने राजनीतिक गतिविधियों, हिन्दी प्रचार कार्य और साहित्यिक गतिविधियों के रूप में

उल्लेखनीय काम किया है। पढाई के बाद उनके राजनैतिक कार्यकलापों का संबंध साहित्य और लेखकों से रहा।

राजनीतिक गतिविधियाँ :-

जब वे दक्षिण भारत में राष्ट्रभाषा की सेवा का पवित्र कार्य कर रहे थे उन्होंने दक्षिण भारत में अंग्रेज द्वारा संचलिक तत्कालिन रचनात्मक कार्यों तथा राजनीतिक आंदोलनों में भाग लिया था। सन 1948 में गांधीजी की ह-त्या से गुप्त जी का कांग्रेस पर से विश्वास उठ गया और उन्होंने कांग्रेस से नाता तोडा। वे सन 1947 तक ही कांग्रेस में थे। कांग्रेस से नाता तोडने के बाद उन्हें स्पष्ट हुआ कि कांग्रेस अब कांग्रेस नहीं रही है उसके नेता परदे के पिछे लडने झगडने लगे हैं।

सन 1948 में वे भारतीय साम्यवादी दल में प्रविष्ठ हुअे और इसीके परिणामस्वरूप उनकी अगली साहित्यिक रचनाओं का स्वरूप एकदम बदल गया। वे प्रगतिशील लेखक संघ में काम करने लगे। लेखक के साथ किये गये पत्रव्यवहार के अनुसार उनके दि. 3 अप्रैल 1992 के पत्र में वे लिखते हैं - "मेरे प्राय: सभी उपन्यास किसी न किसी अर्थ में प्रगतिशील हैं। मैं आरंभ से ही प्रगतिशील लेखक संघ से संबंधित रहा हूँ।"[3] स्पष्ट है कि लेखक की सारी रचनाएँ प्रगतिवादी चेतना से संपृक्त हैं। सन 1962 में भारतीय साम्यवादी दल का विघटन हुआ और गुप्त जी मार्क्सवादी दल में संमिलित हुअे आज भी वे इसी दल के पक्षाधर बने रहे हैं।

भैरव जी समय-समय पर देश के कोने-कोने में आयोजित की जानेवाली साहित्यिक संगोष्ठियों में भाग लेकर साहित्यकारों का दिशा दिग्दर्शन करते आ रहे हैं। वे सन 1945 में प्रगतिशील लेखक संघ इलाहाबाद शाखा के मंत्री बने और सन 1949 में उत्तर प्रदेश के प्रगतिशील लेखक संघ के सचिव चुने गये। सन 1948 में उत्तरप्रदेश हिन्दी पत्रकार संघ की कार्यकारिणी के सदस्य चुने गये। अब वे जनवादी लेखक संघ के अध्यक्ष हैं।

बहुमुखी प्रतिभा के धनी लेखक :-

गुप्त जी की प्रतिभा हिन्दी साहित्य की किसी एक विधा तक ही सीमित नहीं रही वे बहुमुखी प्रतिभा के लेखक हैं। उन्होंने उपन्यास, कहानी, नाटक, लेख, अनुवाद, कविता आदि सभी विधाओं पर चतुराई के साथ अपनी लेखनी चलाई। उनके साहित्य में उनका कथाकार का रूप प्रमुख रूप में देखने को मिलता है। उन्होंने अब तक कुल 20 उपन्यास, ।। कहानीसंग्रह लिखे हैं। फूटकर रचनाओं के रूप में उन्होंने विपुल लेखन कार्य किया है। उन्होंने दो सौ से भी अधिक कहानियाँ लिखी जो देश के विविध पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं। उपन्यास एवं कहानी के अतिरिक्त उन्होंने नाटयक्षेत्र में भी कई एकांकी नाटक भी लिखे इसके साथ-साथ समीक्षा लेखों, टिप्पणियों आदि से

उन्होंने हिन्दी साहित्य भंडार को समृध्द किया। "चंदबरदाई" उनका प्रसिध्द नाटक माना जाता है।

साहित्य सृजन की भाँति उनका संपादन क्षेत्र भी विस्तार से सामने आता है। उनके द्वारा संपादित पत्रिकाओं में कहीं पर संपादकीय लेखक के रूप में वे दिखलाई देते हैं तो कहीं साहित्य सर्जक के रूप में तो कहीं आलोचक के रूप में।

अन्य रचनाकारों के प्रति योगदान :-

उन्होंने अनेक नये रचनाकारों को दिशा-दिग्दर्शन करके उनकी रचनओं को प्रकाशन के योग्य बनाया। उन्हें दिशा-दिग्दर्शन करके उनकी प्रतिभा को बढावा दिया। संपादक के रूप में उनके दो रूप हमारे सामने आते हैं - (1) वेतन भोगी संपादक (2) स्वतंत्र रूप के संपादक आदि। स्वतंत्र प्रकृति के कारण उनके संपादन कार्य में कई बार आपत्तियाँ आयी। उन्होंने "माया", "मनोरमा", "मनोहर कहानियाँ", "कहानी", "उपन्यास" और "नई कहानी" आदि उल्लेखनीय पत्रिकाओं का संपादन किया। स्वतंत्र संपादक के रूप में "समारंभ" और "प्रारंभ" आदि पत्रिकाओं का संपादन किया। "नया साहित्य" के संपादन में भी उन्होंने बडा योग दिया है। सन 1962 में प्रकाशक से मतभेद होने के कारण "नई कहानियाँ" के संपादक पद से उन्होंने त्यागपत्र दिया। फलस्वरूप उदरपूर्ति की समस्या का निर्माण गुप्त जी के सामने खडा हुआ। लगता है कि उनका साहित्य-सृजन भी कअी चढाव-उतारों से युक्त है।

व्यक्तित्व के विविध पहलू :-

गुप्त जी ने स्वाभिमान को बिना ठेंच लगाये आजीविका का कार्य चुना। अब वे सिध्दहस्त लेखक के रूप में हिन्दी साहित्याकाश में पहचाने जाते हैं। उन्होंने स्वतंत्र प्रकाशन "धारा प्रकाशन" आरंभ कर दिया है।

गुप्त जी की प्रकृति निष्कपट एवं अत्यंतिक सरल है। उनकी रहन-सहन सरल और सादी हैं। वे खद्दर का कुरता - पाजामा पहनते हैं। घर पर बहुदा लुंगी का प्रयोग करते हैं। उनकी रहन-सहन पर पूरे उत्तर-प्रदेश ग्रामांचल की स्पष्ट छाप है। सीर पर कंधों तक लटकते घुंगराले बाल, दाढी-मूँछ सफाचट, ढिली बाहों का खादी का कुरता, पैरों में पाजामा और जूते अथवा पंपशूज इस प्रकार का चित्र उनके सादगीपूर्ण वेशभूषा का निर्देशक है। उनकी वेशभूषा पर भारतीयता की गंध है। नकली जिंदगी उन्हें पसंद नहीं है। सादा जीवन उन्हें रूचिकर लगता है। उनकी सादगी का अनुकरण उनके परिवार के सभी सदस्यों ने किया है। वे पान खाने के शौकीन हैं। वे अपने पास ही पान की डिबिया रखते हैं। पान के साथ-साथ तम्बाखू का प्रयोग भी करते हैं। आजकल उन्होंने पान खाना छोड दिया है और केवल सिग्रेट पीते हैं।

गुप्त जी एक मस्तमौला आनंदी जीव हैं। वे अपने सिध्दांतों के कट्टर समर्थक हैं। बडे-बडे

प्रलोभनों में भी वे सिध्दांतों से नही डिग सकते। उनकी प्रवृत्ति में अवसरवादिता, व्यावसायिक तिडकमबाजी नही है। उन्होंने अपने सिध्दातों का सौदा कभी नही किया। वे पूरी निष्ठा और ईमानदारी से अपने सिध्दांतों पर अडिग रहते हैं। कई अवसरों पर उन्होंने अपने सिध्दातों की सुरक्षा के लिए नौकरी से इस्तिफा दिया है। अवसरवादिता के वे पूरे विरोधी हैं। अवसरवादियों की वे कभी सहायता नही करते। इसलिए गुप्त जी को असहयोगी व्यक्ति मानना भ्रामक हैं। वास्तव में "गुप्त जी स्वाभिमानी मित्र स्वभाव के मित्र हैं। उनकी अवसरवादिता के प्रति घोर घृणा के कारण उनके अनेक मित्रों ने उन्हें असहयोगी व्यक्ति तक कह दिया है।" परंतु गुप्त जी ने प्रत्येक मित्र का भरपूर सहयोग दिया है। स्पष्ट है कि गुप्त जी सरल, निष्कपट, स्वाभिमानी, विनोदी स्वभाव के हैं। वे अजनबी को भी आत्मियता से मिलते हैं और उनके साथ तदाकार भी बन जाते हैं।

गुप्त जी ने अपने लेखन के प्रति जागरूक रहे हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं की समीक्षा को अधिक महत्व नही दिया है। उनका सिध्दांत है, "सार-सार को गहि रहे थोथा देही उडाय।" इस तरह आलोचना की कटूता को उन्होंने कभी भी स्वीकार नही किया। इतनाही नहीं स्वसाहित्य से संबंधित समिक्षाओं को कभी सहेजकर नही रखा। गुप्त जी में परस्पर प्रशंसयति की प्रवृत्ति का आभाव है इसलिए उनके अंतरंग मित्र बहुत कम बने हैं परंतु जो उनके निकट संपर्क में आया उसने उनका स्वभाव विन्म्र प्रवृत्ति का, विनोदी और जिंदादिल वृत्ति का और हस्मुख कोटि का पाया है। "मुझे खुद को अनुभव है कि मैंने जब-जब भैरवप्रसाद गुप्त जी से पत्रव्यवहार किया तब उन्होंने मेरी सारी कठिनाईयों का तुरंत ही जबाब दिया। पत्रव्यवहार में वे अत्यंतिक तत्पर दिखाओ देते हैं। हिन्दी के सुप्रसिध्द साहित्यकार विष्णू प्रभाकर जी ने उनके संबंध में लिखा है, "गुप्त जी मेघावी, परिश्रमी और मित्र जाति के व्यक्ति हैं। मैं उनके साहित्य और स्नेहशील व्यक्तित्व दोनों का ही प्रशंसक हूँ।"[4]

करणसिंह चौहान के मतानुसार "आजादी के बाद की साहित्यिक हलचालों से सरोकार रखनेवाला कोई भी व्यक्ति भैरवप्रसाद गुप्त के नाम से अपरिचित नहीं हो सकता। केवल इतना ही नहीं वह यह भी जानता होगा कि, नयी कहानी अंदोलन के, "नई कहानियाँ" पत्रिका के बेजोड़ संपादक, कितने ही लेखकों को साहित्य में लानेवाले और कहानियों को आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी की लगन से संवारनेवाले भैरवप्रसाद गुप्त एक प्रतिष्ठित कथा लेखक ही नहीं बल्कि आजादी के बाद साहित्य में हो रही तमाम सार्थक आंदोलनकारी हलचलों में सर्वाधिक सक्रिय रचनाकार रहे हैं।"[5] डॉ. विश्वंभर उपध्याय के मतानुसार, "जनमुक्ति के बाद जब भारतीय जनता और जनपक्षधर लेखकों-अंदोलनकर्ताओं का इतिहास लिखा जाएगा तब श्री भैरवप्रसाद गुप्त की जीवन्तता, जीवट और जागरूकता को लाल अक्षरों में पंक्तिबध्द किया जायेगा। लेखक तो अनेक हैं मगर लेखकीय चेतना और संवेदना को क्रांतिकारी मोड़ देनेवाले लेखक

बहुत कम हैं। इस चेतना सागर में प्रचण्ड लहर बनाने वालों में भैरवप्रसाद गुप्त प्रमुख हैं।"[6] शिवकुमार मिश्र के शब्दों में, ".....शासकीय राजनीति विचारधारा और सांस्कृतिक मूल्य चेतना की पूर्णतया अस्वीकृत करने और उसका पूरी तरह विरोध करने का निर्णय जिन लेखकों ने किया भैरवप्रसाद गुप्त का नाम उनकी पहली कतार में आता है। भैरव ने मुख्यतः उपन्यास रूप को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम चुनते हुअे उत्तरी भारत के बहुविध सामाजिक यथार्थ की आलोचना और सतर्कता के साथ चित्रित करने का निर्णय किया और अपने विभिन्न उपन्यासों के माध्यम से इस गम्भीर लेखकीय निर्णय को अत्यंत प्रभावी रूप में क्रियान्वित किया।"[7] आनंद प्रकाश के शब्दों में - "प्रेमचंद की ही तरह भैरवप्रसाद गुप्त ने केन्द्रीयता उस मनुष्य को दी है, उस साधारण जन को दी है जो अपने सुख-दुख, हर्ष-विषाद, सपनों और संघर्षों के साथ किसी जमीन पर जीता और मरता है। इसी मनुष्य को उसकी प्रतिनिधि सच्चाइयों के साथ सामने लाना प्रेमचंद और भैरवप्रसाद का लक्ष रहा है और इसी लिए वे तथाकथित आंचलिकता की सीमाओं को तोडते हुअे, एक खास जमीन की कहानी कहते हुअे भी उसका अतिक्रमण करते हैं, आंचलिक जीवन के नहीं, ग्रामीण जीवन के कथाकार बनते हैं।"[8]

भैरव जी का कृतित्व :-

हमने इस लघु-शोध-प्रबंध में भैरव जी की केवल पांच औपन्यासिक रचनाओं को चुनकर भैरव जी के आलोच्य उपन्यासों में अभिव्यक्त प्रगतिवादी चेतना संबंधी सभी अवधारणाओं को सही आशय के साथ तलाशने का प्रयत्न किया है। इस अध्याय में हमने विस्तार भय के कारण उनके कृतित्व के अंतर्गत उनकी उपलब्ध केवल महत्वपूर्ण औपन्यासिक रचनाओं का ही संक्षेप में परिचय करा दिया है। बाकी रचनाओं की केवल सूची ही दी है।

हिन्दी कथा साहित्य में मार्क्सवादी विचार-धारा के आधार पर वर्ग-संघर्ष की चेतना के विकास को मजबुत करने का प्रयास हुआ है। यशपाल, नागार्जुन, भैरवप्रसाद गुप्त, भीष्म सहानी, ज्ञानरंजन और काशिनाथ तक एक लंबी कतार मिलती है। इन कथाकारों ने सामंतवादी, पूंजीवादी, व्यक्तिवादी और उसके तमाम बिमार मनसुबों की आलोचना की है। ये सभी समाजवादी, जनवादी की विचारधारा से जनता की सामूहिक और संगठित चेतना को सोद्देश्य संघर्ष तक आगे बढाने में सक्षम हैं। इन्हें अपने रचना प्रयासों में सफलता मिली हैं। इन लेखकों ने जनविरोधी विचारों को आत्मसात नही किया हैं। इन्होंने परिवेश की समग्रता में कथानक संदर्भ और कथापात्रों की रचना की है। इसीलिए भैरव जी की कथाओं में चित्रण की प्रगल्भता की अपेक्षा जीवन की बढती हुअी अनुभूति मिलती है। भैरव जी की रचनाओं में पूर्व कल्पनाओं और अनुमानों का आभास नही होता हैं इनमें जीवन की प्रत्यक्षता और स्पष्टता देखने को मिलती है। यथार्थवादी दृष्टिकोण मिलता है। सामूहिक चेतना के द्वंद्वपूर्ण विकास में प्राथमिकता किन

समस्याओं को दी जाये तथा वाम-संस्कृति को किस तरहा विश्लेषित किया जाये? उसमें जनता की भागीदारी को कैसे बढाया जाये इन तमाम प्रश्नों को और समस्याओं को प्रगतिशील जनवादी रचनाकार श्री भैरवप्रसाद गुप्त जी ने वस्तुपरक रूप में पाठकों को समझाया है। इनकी रचनाओं में संघर्ष की भूमिका और यथार्थवादिता है। "भैरवप्रसाद गुप्त जी वामपंथी बुध्दिजीवी और जनवादी कथाकार हैं। वे लेखक के रूप में लगभग चार दशकों से सक्रिय हैं। भैरव जी ने प्रेमचंद और यशपाल के लोकबध्द समाजवादी वामदृष्टि को अपने समकालीन जीवन के अनुरूप आगे बढाया हैं। आजादी के बाद मृतप्राय सामंतवादी व्यवस्था और नयी पूंजीवादी व्यवस्था का द्वंद्वात्मक भौतिकवादी दृष्टि से जितना सही और सक्षम चित्रण तथा संघर्ष के क्रम में बदलनेवाली परिस्थितियों का विश्लेषण भैरवप्रसाद गुप्त ने किया है वैसे हिन्दी के अन्य अनेक जनवादी कथाकार नहीं कर सके हैं। भैरवप्रसाद गुप्त जी अंधेरे के विरूध्द रोशनी की लडाई के कथाकार हैं। हिन्दी के जनवादी कथा साहित्य में भैरवप्रसाद एक दिशा निर्देशक और दिशा चालक की तरह अग्रिम पंक्ति में खडे हैं।"[9] भैरवप्रसाद जी सर्वहारा को आम आदमी के अमूर्त सज्ञान में ले जानेवालों का विरोध करते हैं। सर्वहारा बोध अपने विशिष्ठ भौतिक, सामाजिक परिस्थितियोंसे निर्मित तथा एक निश्चित उद्देश्य की ओर आगे बढनेवाली की चेतना है जिसका गैरजनवादी सिदधांतोंसे मेल नहीं हो सकता।

भैरवप्रसाद जी के मतानुसार आम आदमी पूंजीवादी समाजव्यवस्था का उद्दिष्ट है। भैरवप्रसाद गुप्त सर्वहारा वर्गबोध के कथाकार हैं। उनकी कथा में वर्गवादी विचारधारा के संघर्ष की व्यावहारिक दिशाओं का चित्रण देखने को मिलता है। वर्गविभक्त समाज के भीतरी और बहारी प्रतिरूप और विरोधों की साफ समझ के आधार पर भैरव जी ने आनेवाले समय की प्रतिबध्दता को विश्वास के आधार पर प्रकट किया है। इतिहास और समकालीन बोध की एकनिष्ठ निरंतरता में हीं अगत परिस्थितियों की विश्वसनीय अवधारणा बनयी जा सकती है। संभावनाओं को खोजा जा सकता है। नतिजों पर पहुँचते हुअे भैरवप्रसाद जी ने ऐतिहासिक अंतर्द्वन्द्व के नियमों का अनुमोदन किया है। इसी भूमिका पर उनकी जनवादी प्रतिबध्दता का संबोधन स्पष्ट हो जाता है। भैरव जी की कथा में तीन केंद्रिय सूत्र देखने को मिलते हैं।

(1) सामंतवादी और पूंजीवादी व्यवस्था में पाये जानेवाले अंतर विरोधपूर्ण अवास्तविक रिश्ते जो गैर मानवीय आचरण करने को बाध्य करते हैं।

(2) समाज जीवन में विसंगति, विद्रुपता, अशिष्टता और निरर्थकता अनिवार्य हो जाती है और इसीसे मनुष्य हीन बन जाता है।

(3) उक्त अवस्थाओं में मुक्ति के लिए मनुष्य और मनुष्यता को स्वतंत्र करने के लिए समाजवादी विचार

SHIVAJI UNIVERSITY LIBRARY
BARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY

के प्रति सक्रिय संबध्दता और प्रतिबध्दता अनिवार्य है। भैरवप्रसाद गुप्त जी ने अपने उपन्यास साहित्य में समकालीन भारतीय जीवन को उसकी विशिष्ट ऐतिहासिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक भुमिका में प्रतिपादित किया है और अपने जनवादी स्वर को आलापा है।

यहाँ उनके उपन्यासों का संक्षिप्त आलेख प्रस्तुत किया गया है।

"मशाल" 1948 में मजदुरों के संघर्ष का, "गंगामैया" 1952 में सामंति शोषण के विरूध्द छोटे किसान के संघर्ष का, "सती मैया का चौरा" 1959 बीसवी सदी के हिन्दुस्थान की यथार्थवादी संघर्षशील चेतना के बदलते हुअे और विकसित होते हुअे रूपों की कथा है। गाँव से शहर तक फैले हुअे सामंतवादी शोषण की कचोट में समूचे देश की गरीब जनता पीस रही हैं। सबकुछ यथास्थिति के भोग जैसा है। मेहनत या कर्म भी समाज में इज्जतदार नहीं बनता क्योंकि आज इज्जत भी वर्ग की श्रेणियों में बँट गयी है। इमान तो वर्गबध्द हो गया है। इन तमाम बातों के विरूध्द यथार्थ प्रतिक्रिया और फिर संघर्ष का जटिल विधान "सती मैया का चौरा" उपन्यास में मिलता है। "सती मैया का चौरा" में जमीदार और किसान के अंर्तविरोधी वर्ग-संघर्षों का, मान्यताओं के विषभरे नासूर का, नगर के पूंजीवादी भ्रष्ट संस्थानों के मानव-विरोधी आचरण का पूरा लेखा-जोखा है। साम्प्रदायिकता का जहर भी यहाँ देखने को मिलता है जो आज की मानवता को ध्वस्त करते जा रहा है। "धरती" 1962 में राष्ट्रीय आंदोलन की लोकचेतना का और अंग्रेजी शोषण के विरूध्द भारतीय प्रतिक्रिया का, "नौजवान" 1974 में एक ग्रामीण छात्र के राष्ट्रीय और सामाजिक अंदोलनों में शरीक होने तथा फलश्रुति होने की संभावनाओं का यथार्थ चित्रण हुआ हैं। "बांदी" और "रंभा" में जीवन की विसंगतियों, विद्रुपताओं और निरर्थकता के बोध का परिचय प्राप्त होता है। "बांदी" और "रंभा" में शोषण में पैदा होनेवाली अलगावपूर्ण संस्कृति के विरूध्द इतिहास और समाज की वास्तविकता का प्रतिपादन किया गया है। "बांदी" में मुंदरी से लेकर बेंगा, पेंगा आदि सभी बंधआ हैं। सभी बडे सरकार की निरंकुश सत्ता की पूर्ति के यंत्र हैं। गाँव का पुजारी, वैद्य आदि भी सत्वहीन हैं। "रंभा" उपन्यास में स्वयंसेवी अश्रमों के खोखलेपन को स्पष्ट किया हैं। गैर राजनीतिक बोध के विघातक परिणामों को यहाँ विशद किया है। पूंजीवादी युग में नीति और धर्म की बातें करनेवालों की पोल खोल दी गयी है। विज्ञान के विरूध्द आचरणवाली शिक्षा-दीक्षा देनेवाला सर्वोदय मनुष्य को शक्तिहीन और संन्यासी बना देता हैं। "रंभा" उपन्यास में इस तथ्य को पकडा हैं।

"मशाल" का नरेन देहाती पिछडेपन से क्षुब्ध होकर आर्थिक विषमता को दूर करना चाहता है। नरेन शोषित वर्ग के संघर्ष में भाग लेता है। इस उपन्यास में मजदूर श्रम की संगठित और जागरूक संस्कृति का विकास दिखाया है। कानपुर की मजदूर हडताल और अंदोलन की पृष्ठभूमि में मजदूरों के संयुक्त मोर्चे का तथा शोषितों के इन्कलावी रास्ते का सही दृष्टिकोण बनाया गया है।

"गंगामैया" 1952 का मटरू वर्ग संघर्ष का प्रतिनिधि पात्र लगता है। वह सामंती व्यवस्था का विरोध करके श्रमिक मजदूरों का आत्मबल संगठन शक्ति के माध्यम से बढाता है। "गंगामैया" में सामूहिक खेती तथा उसकी सफलता के लिए किसान संगठन की जरूरत भी विशद की गयी है।

"नौजवान" 1974 में साम्राज्यवाद का विरोध करके लोकतांत्रिक मूल्यों की आजादी के संघर्षमयी चित्र पेश किये गये हैं। गाँव के स्कूल से विश्वविद्यालय तक की यात्रा में छात्र भरत की मानसिक रचना के सोपानों की यथार्थ कथा लिखी गयी हैं। इस उपन्यास में भैरवप्रसाद जी ने छात्र संघर्ष के उद्देश्यों को स्पष्ट किया है।

इन आलोच्य उपन्यासों के सिवा उनके उपलब्ध अन्य उपन्यासों का भी संक्षिप्त विवरण इस लघु-शोध-प्रबंध में किया गया है।

आशा - 1963 :-

"आशा" श्री भैरवप्रसाद गुप्त जी का 1963 में प्रकाशित सामंतयुगीन नारी का यथार्थ चित्रण करनेवाला उपन्यास है। "आशा" उपन्यास आत्मकथनात्मक उपन्यास है। उपन्यास की नायिका आशा स्वयं अपनी कहानी सुनाती है। आशा का एक गरीब दुकानदार की बेटी होना, परिस्थिति और नौजवानी द्वारा उसपर अन्याय किया जाना, स्थानीय नबाब द्वारा उसे महल में बुलाकर उसकी शारीरिक क्षमता को समाप्त करना, सेठ कालिंदीप्रसाद द्वारा जानकीदेवी उर्फ आशा को रखैल बनाने की इच्छा व्यक्त करना, सेठजी के बार-बार अनुरोध किये जाने पर भी आशा द्वारा इन्कार किया जाना, सेठ द्वारा आशा को पाने का प्रयत्न किया जाना, आशा की क्षमता नष्ट होने पर उसे नबाब के महल से निकाल देना, एक सितारिये के साथ रहकर सितार सिखकर उसका महफिल में गाने-बजाने लगना, लोगों का आशा की सितार-कला की अपेक्षा उसके रूप की ओर आकर्षित होना, सेठ कालिंदीप्रसाद द्वारा आशा को प्राप्त करने का निश्चय करना आदि बातें इस उपन्यास में स्थित नारी-शोषण के आयामों पर प्रकाश डालती हैं।

सामन्तवादी और पूंजीवादी व्यवस्था में नारी का शोषण हमेशा के लिए हो रहा था। सामंतवादी,शासक लोग जब भी किसी सुंदर लडकी को देखते उसे अपने महल में बुला लेते, उनके माँ-बाप भी इन शोषित शासकों का मुकाबला नहीं कर पाते और अपने हाथों से अपनी लडकी को बली देकर मिलनेवाली रकम से खुश हो जाते। नबाब सामन्त भी एक ऐसा ही पात्र है जो आशा जैसे सुकुमार युवति को सताता है, उसका उपभोग भी लेता है और उसे फिर छोड दिया जाता है दुनिया के दुष्टचक्र में। आशा नबाब से मुक्त तो हो जाती है परंतु उसकी आजादी उसे पतन की ओर ले जाती है। सामन्तवादी युग में नारी की स्थिति कितनी असहाय थी यह भी गुप्त जी ने यहाँ दिखाया है। नारी की यह घुटनमयी, छटपटाहटपूर्ण जिन्दगी सामन्तवादी युग की देन है। आज सामन्तवाद के न रहने पर भी नारी की परिस्थिति में कोई सुधार लक्षित नहीं होता आया है। सामन्तवाद और सामंतवादी वैभव के टूटने के बाद

12285
A

अब उसकी जगह धनवान, पैसेवाले लोगों ने ले ली है। आज ये धनिक सामंतवादी प्रवृत्ति का अनुकरण करके नारी-शोषण करने जुटे हुअे लक्षित होते हैं।

"आशा" में गुप्त जी ने दुकानदारों के जीवन का यथार्थ चित्रण किया है। आशा के माता-पिता और भाइयों का पारिवारिक व्यवहार प्रायः दुकानदार वर्ग का यथार्थ चित्रण पेश करता है। इस उपन्यास में सेक्स का दबाये रखने का जो दुष्परिणाम है वह भी अंकित किया गया है। तेजी से सेक्स की ओर आकर्षित आशा को सही रास्ता न मिलनेपर उसे शारीरिक और मानसिक यातनाओं का शिकार बनना पडता हैं। सेक्स सम्बन्धों के प्रति बेहिस होने के कारण ठाकूर द्वारा वह ठूकरा दी जाती है। लेकिन यह उसके भविष्य के लिए वरदान सिध्द होता है।

इस उपन्यास में सामंति शोषण से शोषित नारी आशा की व्यथा-कथा को प्रगतिवादी दृष्टिकोण से भैरव जी ने स्पष्ट किया है। नारी-शोषण में लेखक की प्रगतिवादी दृष्टि इस उपन्यास की एक बडी उपलब्धि लगती है। सामंती और पूंजीपति की कुटिल नीति से दमित नारी की दयनीय स्थिति पर लेखक ने प्रगतिवादी दृष्टिकोण के साथ अपना मंतव्य स्पष्ट किया है।

कालिन्दी - 1963 :-

गुप्त जी ने "आशा", "कालिन्दी" और "रंभा" एक प्रकार के तीन उपन्यास लिखे हैं, जिसकी पहली कडी "आशा" है तो दूसरी "कालिन्दी"। इसमें सेठ कालिन्दीप्रसाद का अपने पिताजी का विरोध सहकर एम.ए.तक पढना, परिवार की आर्थिक स्थिति में बदलाव के लिए उसके पिताजी द्वारा उसका विवाह एक फूहड लडकी से करा देना, कालिन्दीप्रसाद को बदले में कोठी और कारखानों का मिलना, उसके श्वसुर द्वारा कालिन्दी को व्यापार में जुटाकर कालिन्दी द्वारा बहुत धन कमाना, अंग्रेज और कांग्रेस से साठ-गांठ रखने से आजादी के बाद भी उसकी प्रतिष्ठा का बना रहना, धन-प्रतिष्ठा प्राप्ति के बाद भी उसे अपने जीवन में सूनापन महसूस होना, पत्नी से असंतुष्ट बनबर उसके द्वारा एक तवायफ को रखैल के रूप में रखना, कालिन्दी तवायफ से अवैध सम्बन्धों से एक बच्ची का निर्माण होना, शिशु के पैदा होते ही तवायफ की मौत हो जाना, शिशु बच्ची का नाम "रम्भा" रखा जाना, सोलह वर्ष की हालत में रम्भा का एक मोटे थुलथुलीत शरीर के सेठजी की रखैल बनकर रहना, रंभा का तवायफ की बेटी होने के कारण सेठ कालिन्दी द्वारा रंभा को अपनी बेटी कहने से लज्जा महसूस करना, कालिन्दी द्वारा रंभा को अपनी दास्तान सूना देना, कलिन्दी द्वारा रम्भा की क्षमा मांगना आदि घटनाएँ इस उपन्यास में नारी स्थिति की दयनीयता पर प्रकाश डालती हैं। इस उपन्यास में पूंजीवादी-सामंतीय व्यवस्था में नारी शोषण के विविध आयाम स्पष्ट लक्षित होते हैं। यही कालिन्दी की कथा समाप्त हो जाती है और "रंभा" की कथा आरंभ हो जाती है।

"कालिन्दी" में सेठ कालिन्दी के जीवन का चित्रण गुप्त जी ने प्रस्तुत किया है, जिससे

नारी शोषण का पता चलता है। कालिन्दी की पत्नी का नारी के रूप में होनेवाला शोषण तवायफ से उत्पन्न रंभा का एक चालीस वर्षीय व्यक्ति के साथ रखैल बनकर रहना ये सारी बातें गुप्त जी ने इस उपन्यास में चित्रित करके तत्कालीन नारी शोषण की दारूण कथा-व्यथा का प्रगतिवादी दृष्टि से चित्रांकन किया है। तत्कालीन आर्थिक विषमता एवं वर्गीय भेदाभेद के कारण ही समाज के निम्न स्तरों में पली नारियों का शोषण होता जा रहा था, यह भी यहाँ स्पष्ट लक्षित होता है।

रम्भा - 1969 :-

"आशा", "कालिन्दी" के बाद याने तीसरी कडी के रूप में गुप्त जी का "रम्भा" उपन्यास है। "कालिन्दी" उपन्यास में उच्चवर्ग के खोखलेपन, गन्दगी, फरेब का चित्रण किया है। सेठ सोनेलाल की रखैल बनने पर रम्भा द्वारा पढाई जारी रखना, आनंद से उसको हिन्दी पढाना, सोनेलाल से अवैध गर्भ रहने पर रम्भा द्वारा सोनेलाल और अपने पिता सेठ कालिन्दीप्रसाद की नफरत करना, सोनेलाल के लाख कहने पर उसके द्वारा सोनेलाल की बातों को न मानना, रम्भा का आनंद से अधिक प्रभावित हो जाना, रम्भा द्वारा एम.ए. की उपाधि हासिल करना, रम्भा द्वारा आनंद से पारीवारिक संबंध प्रस्थापित करना, आनंद द्वारा उसे जनसेवा के लिए प्रेरित करना, रम्भा द्वारा ग्रामीण अंचल में एक बालिका विद्यालय की स्थापना करना, अकाल के अवसर पर रम्भा द्वारा अपना सारा धन गरीबों में बांटना, आनंद की नजर रम्भा के धन पर केंद्रित होना, रम्भा के विचारों से आनंद का खीज जाना, आनंद की पत्नी द्वारा अपने पति के साथ अवैध संबंध रखने के आरोप में रम्भा की पीटाई करके उसे घर से बाहर निकालना, रम्भा द्वारा आनंद के चाचा मदनभाई के आश्रम में आश्रय पाना, अपनी दास्तान लिखकर रम्भा द्वारा आनंद का विरोध करने की बातें सोचना, मदनभाई के निस्पृह सेवा कार्य से उसके मन में परिवर्तन होना, अंत में रम्भा द्वारा मद्रास में अपने नौकरों के साथ जीवन-यापन करना और एक दिन मदनभाई की हत्या की खबर उसे अचानक मिलना आदि घटनाएँ इस उपन्यास की कथावस्तु में देखने को मिलती है।

"रम्भा" में गांधीवाद और गांधीवादी प्रयासों की असफलता का वर्णन किया गया है। वास्तव में गांधीवाद एक सच्चा मानवतावाद था मगर मध्य और उच्च वर्ग के लोगों ने इसका लाभ अपने वैयक्तिक स्वार्थ के लिए किया इसका अच्छा उदाहरण आनंद के रूप से हमें देखने को मिलता है। आनंद का प्रारंभिक रूप देखने के पश्चात जनसेवा की आड में अपने उद्देश्यों को सफल करने का उसका रूप हमारे सामने आता है, तो निरीह भाव से सेवा करनेवाले मदन भाई की हत्या हो जाती है।

"रम्भा" में नारी शोषण की समस्या में प्रगतिवादी दृष्टि से लक्षित होती है। "आशा", "कालिन्दी" और "रम्भा" इन तीन उपन्यासों में लेखक ने वेश्या वर्ग की समस्या को उठाया है। नारी को एक सामान्य वस्तु मानकर उसका बाजार में मूल्य लगाया जाता है, उसे बेचा-खरीदा जाता है। "रम्भा"

में सोनेलाल सोलह वर्षीय रम्भा को अपने रखैल के रूप में खरीदते हैं। केवल उच्चवर्ग ही नहीं बल्कि मध्य वर्ग के लोग भी नारी का उपयोग अपने स्वार्थ के लिए करते हैं जिसका प्रमाण हमें आनंद के माध्यम से मिलता है। वह रम्भा के धन का प्रयोग अपने स्वार्थ के लिए करता हैं। वह रम्भा को नहीं बल्कि रम्भा के धन को चाहता है।

गुप्त जी ने मदनभाई के आश्रम की कल्पना के माध्यम से गांधीवाद के निष्क्रिय सिध्दांत की असफलता को दिखाया है। इस उपन्यासों में नारी शोषण का एक अलग आयाम स्पष्ट होता है। रम्भा का भटकाव नारी-शोषण की दु:खद गाथा का दस्तावेज लगता है। प्रेमचंद जी के "सेवासदन" में भी आश्रम की व्यवस्था पर करारा व्यंग्य किया है। "गांधीवाद के प्रमुख सिध्दांतों में वर्ग-सहयोग का प्राथमिक महत्व है। गांधीजी मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में व्यष्टि की तुलना में समष्टि को वरीयता प्रदान करते थे। वे एक ऐसे राज्य की परिकल्पना करते थे जिसमें सभी वर्ग समान हो और कोई भी वर्ग किसी दूसरे वर्ग का शोषण न करे। भैरवप्रसाद गुप्त जी के उपन्यास "रम्भा" में इस विचारधारा से संबंधित संकेत रंभा के माध्यम से प्रस्तुत किये गये हैं।"[10] रंभा में सत्याग्रह की शक्ति का संकेत भी मिलता है।

धरती - 1962 :-

भैरवप्रसाद गुप्त जी ने हमेशाही अपने साहित्य के माध्यम से सामान्य जनता को और उनके प्रश्नों को पाठकों तक पहुँचाने का प्रयत्न किया है। "धरती" में गुप्त जी ने आदर्श और यथार्थ के बीच संघर्ष दिखाकर प्रगतिवाद का धूमिल चित्र उपस्थित करता है। उपन्यास का नायक "मोहन" स्वयं गुप्त जी के विचारों का वाहक हैं। "मोहन" के व्यक्तित्व में हमें भैरवप्रसाद गुप्त जी के विचारों की छबी देखने को मिलती है। मोहन और शशी सामान्य मध्यवर्गीय व्यक्ति हैं और प्रगतिवादी विचारधारा के वाहक है।

मोहन जैसे लेखक का गाँव से कटकर नगर में बसना, गाँव से उसकी माँ की बीमारी का तार आना, गाँव जाने की सोचते ही उसके मन में बचपन की घटनाओं का लेखा-जोखा शशी को बता देना, मोहन का वर्तमान स्थिति से असंतुष्ट रहना, उसे अपने द्वारा निर्मित रचना को छापने के लिए प्रकाशक का न मिलना, किसी के द्वारा इस कार्य में उसे प्रोत्साहन भी न मिलना, अत्याधिक विचारों के कारण उसका मानसिक संतुलन बिगड जाना आदि सारी घटनाएँ मोहन की प्रतिकूल स्थिति के सबूत पाठकों के सामने खडी कर देती हैं। इसपर प्रतिक्रिया को व्यक्त करते हुअे मोहन कहता है - "मैं समझता हूँ कि हमारे दु:खों का मूल कारण हमारी यह सामाजिक व्यवस्था है। हमारी इन समझों का द्वंद्व भी हमारी लडाई की एक बुनियाद है - मैं इसलिए झुँझलाता हूँ कि हमारी सामाजिक व्यवस्था क्यों ऐसी है कि

इसमें एक ईमानदार, परिश्रमी और योग्य व्यक्ति को जीवन की साधारण सुविधा की प्राप्ति नहीं हो पाती।"[11] मोहन द्वारा दिन-रात मेहनत करके अपनी रचना को पूरी करने पर भी इस रचना की तरफ किसी का ध्यान न जाना, मोहन द्वारा समाज में स्थित हत्याएँ और आत्महत्याओं का कारण समाज-व्यवस्था को मानना, मोहन में आत्माभिमान का आधिक्य होना, पूंजीपति वर्ग के प्रतिनिधि बिशुन द्वारा उसकी सहायता करने की चाह व्यक्त करना, मोहन द्वारा इसे अपमान समझना, मोहन-बिशुन गहरे दोस्त होकर भी मोहन का विशुन से हमेशा अलग रहना, जमींदार या किसान के घर जन्म लेना किसी के वश की बात नहीं ऐसा कहकर विशुन द्वारा मोहन को समझना, विशुन द्वारा वर्ग-हित के लिए दोस्ती को तिलांजली देना अच्छा नहीं ऐसा मोहन को समझाना आदि बातें मोहन की आत्माभिमानी प्रवृत्ति पर प्रकाश डालती है। मोहन, विशुन की दोस्ती का मजाक उडाते हुअे कहता है - "सामाजिक स्तर पर हम एक दूसरे के शत्रुही हो सकते हैं। अभी हम अंग्रेजों से लड रहे हैं, कल तुमसे भी लडेंगे। अंग्रेजों ने हमें राजनीतिक रूप से गुलाम बना रखा है और तुम लोगों ने हमें आर्थिक, सामाजिक गुलाम बना रखा है। उन्हें भगाने के बाद हम तुम लोगों को खत्म कर देंगे। अपने देश में हम लोग किसानों और मजदूरों का राज्य स्थापित करेंगे। जैसे के रूस में हुआ है। वर्गहीन समाज की स्थापना हमारा ध्येय है। शोषक वर्ग को समाप्त करने का ध्येय पूरा नहीं हो सकता।"[12] यहाँ लेखक ने "रूस" के अनुकरण पर किसान-मजदूरों के राज्य का सपना देखकर रूस की प्रशंसा की है। यह घटना लेखक के प्रगतिवादी दृष्टिकोण का अच्छा उदाहरण हो सकता है।

यहाँ लेखक ने रूस की तारीफ की है और रूस के अनुकरण पर किसान-मजदूरों के राज्य का सुनहला सपना देखने की चाह प्रकट की है। इसमें पूंजीपति वर्ग के पात्र विशुन के माध्यम से पूंजीपतियों के वंशजों में होनेवाले परिवर्तनों की ओर भी दृष्टिपात किया है और नवमानव के रूप में विशुन को ढालने का प्रयत्न किया है। लेखक के प्रगतिवादी दृष्टिकोन का यह अच्छा उदाहरण है।

मोहन के मन में शोषकों के प्रति घृणा होना, उसके द्वारा सामान्य जनता का नेतृत्व करना, उसके द्वारा शासन-व्यवस्था, सामाजिक और आर्थिक से घृणा करना, शोषक वर्ग के प्रति आक्रोश प्रकट करना, समाज में योग्य व्यक्ति को नौकरी नहीं मिलती ऐसी उसकी धारणा रहना, नौकरी के लिए दिये गये विज्ञापन, चलाई जानेवाली प्रतियोगिताओं को उसके द्वारा जाली मानना, सिफारिशों को उसके द्वारा बेईमानी मानना, पूंजीवादी व्यवस्था पर उसके द्वारा व्यंग्य करना, अपने आदर्शों पर ही चलना उसके द्वारा पसंद करना, अवसरवादियों से घृणा करना, नेताओं की अवसरवादिता पर मोहन द्वारा व्यंग करना, बेकारी की समस्या को उसके द्वारा वर्ग-वैषम्य का कटु फल मानना, राजनीति पर व्यंग करके राजनीतिक भ्रष्टाचार पर मोहन द्वारा कटु व्यंग करना आदि घटनाएँ मोहन के व्यक्तित्व पर गहराई से प्रकाश

डालती हैं। मोहन राजनीति और भ्रष्टाचार पर अपने मत प्रस्तुत करते हुअे लिखता हैं - "आज राजनीति में भयंकर भ्रष्टाचार फैल गया है। आज नेता केवल फायदे के लिए ही सोचते हैं। वह इन्सान नाम के प्राणी को नही जानते। वे केवल अपनी ही सोचते हुअे समय-समय अपनी ही भलाई कैसे हो यही सोचते रहते हैं।" मोहन को इन नेताओं के भाषणों में पाखंडीपन, निष्प्राणता, झूठापन लगता है। आज विदेशी मेहमानों को बुलाकर दी जानेवाली दावतें, अपनी अच्छाईयों के लिए दिये जानेवाले झूठे प्रमाणपत्र, जनता के लिए नेताओं का निष्क्रिय योगदान, जनता की भूखमरी, नेताओं द्वारा बडी-बडी दावतों का आयोजन करके जनता के पैसों की हानी करने की प्रवृत्ति, नेता द्वारा भ्रष्टाचार की नीति आदि बातों पर प्रगतिवादी दृष्टि से सोचकर आज के नेताओं में भी ये प्रवृत्तियाँ कितनी प्रबल बनती जा रही हैं, इसपर भी यहाँ प्रकाश डाला है। मोहन कहता है - "सोने की कन्नी पर छटाँकभर सिमेन्ट उठाकर आप देश को निर्माण कार्य में लगने की प्रेरणा दे लेंगे? रेशमी फीया सोने की कैंची से काटकर आप देश के विकास का दरवाजा खोल लेंगे? मीठी-मीठी बातों से आप देश का खाली पेट भर लेंगे?"[13] यहाँ मोहन ने आज की राजनीति, नेताओं के लम्बे-चौडे आश्वासन, सत्ता के हाथ में आने पर जनता की तरफ उनके द्वारा किया जानेवाला दुर्लक्ष आदि बातों पर प्रकाश डालते हुअे यह विषद किया है कि आज के नेता विश्वासपात्र नही हैं।

गरीब होने पर भी मोहन का स्वाभीमानी एवं आदर्शवादी होना, किसी से दया, सहानुभूति एवं दान की चाह न करना, मोहन की पत्नी का प्रगतिवादी विचारों का होने पर भी वर्तमान स्थिति के प्रति भौतिक दृष्टि से देखना, मोहन की पत्नी शशी द्वारा मोहन के खोखले सिध्दांतों का विरोध करके विशुन द्वारा भेजी गयी मनिऑर्डर को स्वीकार करना ये सारी बातें असली जीवन-सत्यों पर प्रकाश डालती है। विशुन द्वारा भेजा गया मनिऑर्डर स्वीकारने के बाद मोहन शशी को डाँटते हुअे कहता है - "हमें जिस स्थिति में भी रहना पडे रहेगा, चन्द सिक्कों के लिए तुम मेरा स्वाभिमान बेचना चाहती हो? हजारों का हक हडप कर पूंजीपति लोग अपने ऐश का सामान जुटाते हैं तथा उनके लिए दूसरों की सहायता करने का प्रश्न तो केवल ढोंग मात्र है। मोहन शशी को परिस्थिति में सुधार लाने का अभिवचन देता है तो शशी कहती है - "औरतों का तो भगवान पर भी अपना भरोसा नहीं होता है। जाने वह कब क्या कर बैठे? हर हालत में तो भोगना हमें ही पडता है। इसलिए हम मर्दों से कहीं ज्यादा पूजापाठ करती हैं केवल उसके कल्याण के लिए न जिनके भरोसे हम जीती है। हमारा कुछ अनिष्ट हो जाय तो हम कहीं के न रहे? सो अपने भरोसे की खैर हम जिन्दगी भर मानती रहती है फिर किसी के भरोसे जीवित रहने का अर्थ क्या है?"[14]

यहाँ मोहन-शशी के विचारों में संघर्ष दिखाकर शशी के जीवन विषयक विचार अत्यंतिक

महत्वपूर्ण लगते हैं। इन विचारों को सुनकर मोहन भी चकित होता है। मोहन ने ही शशी को विचार करने के काबिल बनाया था। शशी कहती है - "मैंने तो तुम्हारी ही बातें कही हैं। तुमने मुझे पढा-लिखाकर समझने के लायक न बनाया होता तो तुम्हारा क्या बिगड जाता? गुलामों की भी, जैसी भी हो, एक जिन्दगी होती है। लेकिन तुम क्या उनकी उस जिन्दगी की कल्पना कर सकते हो जब उन्हें आजादी का ज्ञान हो जाए और फिर भी वे आजाद न होने पाएँ? आजादी के लिए जान देनेवालों की पीडा का ज्ञान तो तुम्हें है। फिर भी मुझे तुम डाँटते हो, सताते हो, तो कहीं डूबकर जान देने को जी चाहता है।"[15] शशी किसी की गुलाम, आश्रिता एवं अनुगायिनी केवल इस कारण नहीं बनना चाहती कि वह उसके बच्चों का भरण-पोषण करती है। वह मोहन से बार-बार नौकरी लगवाने के लिए कहती है। मगर मोहन को विश्वास है कि जब तक पूंजीपति व्यवस्था समाप्त नहीं होती तब तक मध्यवर्गीय लोगों की परिस्थिति में कोई बदलाव नहीं आ सकता।

आज गाँव का जीवन आभावग्रस्त हो गया है। इसी से गाँव के लोग रोजी-रोटी की तलाश में नगरों की ओर उन्मुख हो गये हैं। शहरों में बडे-बडे औद्योगिक केंद्र बन गये जिससे रोजी-रोटी का प्रबंध हो जाता है। गाँवों में यह सुविधा नहीं है। प्रगति के सभी स्त्रोतों के रूक जाने के बावजूद गाँवों में जो जीवन चल रहा है वह केवल धरती के भरोसे ही है। धरती ही मनुष्य को जीवन-प्रेरणा देती है। शशी से मोहन कहता है - "धरती का विश्वास ही वह चीज है शशी। जिसपर गाँव की आस्था ठहरी हुअी है। यह धरती कभी कितनी बडी थी, लगता था कि इसके गर्भ में इतना अन्न है कि खाये नहीं जा सकता। लेकिन आज यह कितनी छोटी हो गयी है कि स्वयं भूख-प्यास से तडप रही है। फिर भी गाँवों को अपनी सुखी छाती से रक्त पिलाये जा रही है।"[16] इस रक्त पर गाँव का जीवन टिका हुआ है। धरती से जब किसान का सम्बन्ध टूट जाता है तभी वह शहरों की ओर उन्मुख हो जाता है। शशी कहती है - "किसानों की धरती, धरती है और मजदूरों की धरती कारखाना है और बाबुओं की धरती दफतर है और महाजनों की व्यापार है।"[17] यहाँ शशी ने धरती को प्रगतिवादी दृष्टि से बाँटने का अच्छा काम किया है।

मनुष्यों की धरती से आर्थिक सम्बन्ध और भावात्मक सम्बन्ध होता है। हमारी ममता धरती के प्रति बहुत प्रबल होती है जो आसानी से नहीं छोडी जा सकती है। मोहन के मन में धरती के प्रति अपार वेदना है।

भारत के स्वतंत्र होने के पहले भारतवासी सोचते थे कि भारत स्वतंत्र हो जाने बाद वहाँ एक समाजवादी राष्ट्र का निर्माण होगा जो सुखी, सम्पन्न, समृध्द, वर्गहीन तथा शोषणमुक्त होगा मगर भारतीय लोगों की कल्पना का यह चित्र केवल कल्पना तक सीमित रह गया। भारत को स्वाधीनता तो मिली मगर उसके सपने खंडित हुअे। आजादी के बाद जमीन और आसमान सबका था उसे चन्द लोगों ने

हडप किया। स्वतंत्रता के पहले भी और बाद में भी जनता पर अत्याचार जारी रहा। इस अनाचार के विरूध्द आवाज उठानी पडेगी, विद्रोह करना पडेगा। मोहन कहता है अब इन पूंजीपति, चन्द अमीर लोगों के हाथ में जकडी हुअी धरती को छुडाना जरूरी है। स्वतंत्रता के बाद अगर यह स्थिति है तो विद्रोह करना आवश्यक है। "अब वह वक्त दूर नहीं जब नये गाने जन्म लेंगे और उन्हें गानेवाले नये लोग फिर लडाई शुरू होगी और फिर एक नई आजादी हासिल की जायेगी। जब सचमुच हर किसी के लिए ही जमीं होगी और अपना आस्मां होगा।"[18] शशी मोहन के इस विचार से सहमत है मगर मोहन को बिच में ही टोकती है क्या हम लोगों के जीवन में ऐसा होना संभव है तो मोहन शशी से कहता है - "इन्सान सिर्फ अपनी ही पीढी के लिए नहीं लडता है। वह अपने आगे आनेवाली पीढी के लिए भी लडता है। इन्सान को अपने पिछे की लाखों पीढियों के अर्जन के विरासत मिली है और आगे आनेवाली लाखों पीढियों के लिए अपना अर्जन छोड जाता है।"[19]

इस उपन्यास का नायक एक गरीब मध्यवर्ग का प्रतीक है जो अपनी रचना को छापना चाहता है परंतु पैसों की वजह से उसकी यह चाह भी अधूरी रह जाती है। मोहन की माँ की बीमारी पर मोहन को तार मिल जाता है तो वह बचपन की बातें, याद करता है उसके मन ये सारी बातें आ जाती है। वह प्रगतिवादी विचारों का है। मोहन की पत्नी शशी भी प्रगतिवादी विचार रखती हैं। "धरती" उपन्यास के माध्यम से लेखक ने एक ऐसे समाज की कल्पना की है जहाँ प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यता नुसार कर्म करेगा तथा अपने आवश्यकतानुसार धन पायेगा। वर्ग विषमता का अन्त हो जायेगा और सभी अपनी-अपनी चाह से जियेंगे। यहाँ भैरवप्रसाद जी ने अपने मन के विचार मोहन के माध्यम से प्रकट किये हैं। मोहन यहाँ गुप्त जी के विचारों का प्रतिनिधित्व करता है। मोहन एक गरीब इन्सान है उसकी भी अपनी एक तमन्ना है वह अपने बच्चों के भविष्य की ऐसी कल्पना है जब कारखाने, दफतर, घर-बाहर सब धरती बन जायेंगे सारा भेद भाव मिट जायेगा। मगर हम देखते हैं कि मोहन की कल्पना आज भी कल्पना ही है। आज भी परिस्थिति में बदलाव नहीं आया है। आज भी शोषण, वर्गभेद, जातिभेद की समस्याओं ने कठोर स्वरूप धारण कर लिया है। भैरवप्रसाद गुप्त जी अपनी कलम के माध्यम से इसे मिटाना चाहते हैं। वर्ग विषमता का अन्त करना यही लेखक का अन्तिम लक्ष रहा है। मोहन का व्यक्तित्व भैरव जी के व्यक्तित्व से संपृक्त हुआ स्पष्ट होता है।

यहाँ यह भी स्पष्ट हो जाता है कि आज की विषम आर्थिकता के फलस्वरूप जनसाधारण की छोटी-छोटी तमन्नाएँ भी कैसे असफल होती हैं। इन असफलताओं से जनित निराशा ने ही उन्हें वर्ग-संघर्ष के लिए उकसाया है। यहाँ नायक "मोहन" केवल वर्ग-संघर्ष, वर्ग-वैषम्य, आर्थिक विषमता, भ्रष्टाचार आदि पर अपना चिंतन ही प्रकट करता है, इसके खिलाफ लडाई शुरू नहीं कर देता है। वह

मटरू, नरेन की भांति बगावत के लिए तैयार नहीं हो पाया है न संगठन के माध्यम से शोषक प्रवृत्तियों का ध्वंस करता है। यहाँ केवल उसका चिंतन ही लक्षित होता है। यहाँ केवल उसका चिंतन ही लक्षित होता है। शशी के प्रगतिवादी विचार भौतिक सुविधा की ओट में पले हुअे लक्षित होते हैं। उसे सिध्दांतों की अपेक्षा भूख का महत्व अधिक है जो आज की दुनिया का सही यथार्थ है। लगता है "धरती" भैरव जी का आंचलिक प्रादेशिक रूपाभमिय उपन्यास है।

अंतिम अध्याय - 1975 :-

जनवादी कथाकार भैरवप्रसाद गुप्त जी ने "अंतिम अध्याय" में क्रान्तिकारी वर्गों के जीवन के यथार्थ को उपन्यास की कथावस्तु का विषय बनाकर नवोदित वर्ग के लूट-खसोट के जीवन को चित्रित किया है। अपने समय के सामाजिक जीवन के बारे में अलग कोई टिपण्णि न कर उन्होंने मुख्य रूप से एक ही चरित्र नरेंद्र को उठाया है। उसके व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं को प्रस्तुत करते हुअे यह दिखाने की चेष्टा है कि यह नया वर्ग बडी सफाई से बाहरी दिखावे का मुलायम ताना-बाना रचकर कितने हिंस्त्र रूप में उदित हो रहा है, स्वयं को सामाजिक गतिविधियों के केंद्र में पहुँचने के लिए वह नैतिक, सामाजिक तथा राजनीतिक स्तर पर किसी सीमातक गिरने के लिए तैयार है, बल्कि इस गिरावट को उसने दार्शनिक रूप भी दे दिया है। इसे समाज की सम्पूर्ण वास्तविकता नहीं कहा जा सकता।

इस उपन्यास में प्रगतिवादी ताकतें आधुनिकतावाद की ओर उन्मुख राष्ट्रीय ताकतों की सहयात्री कैसे बन चुकी थी, इस वातावरण में सबसे अधिक उपन्यास विधा आत्मसंकट से कैसे गुजर रही थी, इसपर व्यवसायिकता का एक दबाव कैसे था, नये विशिष्ठ वर्ग की राजनैतिक शक्ति तथा अन्य कुछ सामाजिक वर्गों से उनके संबंध की पहचान के उद्देश्य से भैरव जी नें प्रस्तुत उपन्यास लिखा है, ऐसा विदित होता है।

नरेंद्र का जीवन पतनशील होना, अपने जीवन में भयावह संघर्षों से गुजरने के बाद भी उसका सफलता के राजमार्ग पर आकर खडा रहना, गरीबी और बिमारी का रोना रोकर भी उसके द्वारा अपनी महत्वाकांक्षा को पूरी कर लेना, उसमें सामाजिक जिज्ञासा का कूट-कूट कर भरा रहना, लेखक, व्यवसायिक, कम्युनिस्ट आदि सभी रूपों में उसका पाठकों के सामने उपस्थित होना, बडी खुशी के साथ शरणार्थियों की सूची में उसके द्वारा अपन नाम दर्ज करना, सरकार के द्वारा खूब धन कमाना, पहले फाकों में, प्रताडनाओं में जीवन जीनेवाले नरेंद्र का अब समाज का सम्मानित नागरिक बनना, धूर्तता, वाक्चातुर्य और अवसरवादिता के बल पर उसका उन्नति के शिखर पर विराजमान होना, अपने यहाँ काम करने पर रखी हुअी युवतियों को जिंदगी चमका देने का प्रलोभन दिखाकर उनका शोषण करना, उसके द्वारा शांता को अपनी महत्वाकांक्षा का शिकार बनाना, शांता की जिंदगी बनाने का आश्वासन देना,

आत्मकेंद्रित बनकर शांता की माँ को भी अपने घर का काम करने के लिए बाध्य करना, शांता की अस्मिता का शोषण करनेवाले नरेंद्र द्वारा बडी कुशलता के साथ शांता और उसकी माँ को घर से बाहर कर देना, शांता और उसके पिताजी के बीच संघर्ष का निर्माण कराना, नरेंद्र की पूरी जिन्दगी का व्यवसायिक बनना, समाज के एक-एक कोने को उसके द्वारा बाजार समझा जाना, नरेंद्र का बेटा गुम्मू द्वारा अपने ही पिताजी के व्यवहार के लिए बाकायदा सूद पर रूपया देना, नरेंद्र के पारिवारिक संबंध भी लेन-देन के रूप में रहना, नरेंद्र द्वारा अपने मूल्यों एवं संवेदनाओं को खो देना, अभाव, अन्याय और अपमान से जूझनेवाले मार्क्सवाद के संपर्क में आयी ढेरों जिन्दगियों का अवसरवादिता के घाट पर उतर जाना आदि को यहाँ नरेंद्र के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

लगता है कि भैरव जी ने यहाँ मार्क्सवादी सैध्दांतिकता स्वार्थ के झमेले में पडकर अब चिकनाई से कैसे प्रभावित होने लगी है। कुछ टुकडे पाकर शांत रहने या समझौता परस्त हो जाने की लोगों की प्रवृत्ति पर भी नरेंद्र के माध्यम से उपन्यासकार ने आलोचना की है।

अपने जिन्दगी के सारे सुखों को लतेडकर नरेंद्र का कम्युनिस्ट देवराज के संपर्क में आना, हराम की कमाई का सामाजिक दृष्य अपने दोस्त के बीबी के घर देखते ही नरेंद्र की मानसिकता में परिवर्तन हो जाना, प्रगतिशीलता का दामन थामे नरेंद्र का पूंजीवादी सत्ता और व्यवस्था के अंग बने रहना, उन्हें जनकल्याण के सरकारी नारों में क्रान्ति का चमकता तारा दिखाई पडना, सुविधावाद के दरवाजों का फिर खुल जाना, क्रान्तिकारी शक्ति का क्षय होते रहना, समाज में कमाने, बनाने और उडाने की प्रवृत्ति का पनप उठना, रूस भ्रमण, नेताओं के जीवन का लक्ष्य बनना, नरेंद्र द्वारा बडी चालाकी से भ्रमण कार्यों की सूची में अपना नाम दर्ज करा देना, उसके सिध्दांत और व्यवहार में चौडी खाई का निर्माण होना आदि बातें नरेंद्र के पतनशील चरित्र की निशानी लगती है।

सिध्दांत और व्यवहार में चौडी हो गयी खायी से तंग आकर उपन्यास के कम्युनिस्ट पात्र ने कहा है - सब फ्रस्टेट हो रहे हैं। सरीन का कहना है कि बेकार इधर-उधर दौडने से बेहतर है कि कहीं काम किया जाये और हजार पाँच सौ रूपया कमाया जाये। कांग्रेस का और कम्युनिस्ट पार्टी के मिटते फर्क को मूल्यों और संवेदना के स्तर पर रेखांकित करते हुअे गुप्त जी ने प्रगतिशील राजनीति के प्रगतिवादी भँवर की ओर इशारा किया है।

भैरवप्रसाद गुप्त जी ने नरेन्द्र की रूग्णता, रिक्तता, तथा लेखकों के महफिल बाद अपनी खराब हो रही हालत देखकर पैदा हुअी उसकी दहशत का चित्र खिंचकर संकेत दिया है कि, प्रगतिशीलता और पूंजीवाद के गठजोड का अब "अन्तिम अध्याय" आ चुका है। उपन्यास के अन्त में ये पंक्तियाँ देखने को मिलती है - "नरेन्द्र काँप रहा था, हाँप रहा था और फटी-फटी आँखों से सामने

नाचती अपने जीवन के अन्तिम अध्याय की बीभत्स परछाई को घूर रहा था।"[20] यह व्यक्ति की परछाई न होकर व्यवस्था की या उस विशिष्ठ वर्ग की सुरक्षा पंक्ति की परछायी है जो लंबी खिंचकर भी दरार से मुक्त नहीं है। यहाँ कथाकार ने आक्रमण की नयी कतार की रचना के विविध संदर्भों को उजागर नहीं किया। स्पष्ट है कि "अन्तिम अध्याय" जनकल्याण या परोपकार के नाम पर नीजी महत्वाकांक्षाओं की परिपूर्ति एवं उसके लिए प्रगतिशीलता तथा पूंजीवाद के बीच साठ-गांठ की प्रवृत्ति पर स्पष्ट व्यंग है। आज प्रगतिशीलता और पूंजीवाद के बीच गठबंधन लक्षित होने लगा है। पूंजीवाद अधिक धूर्त, कौशल्यपूर्ण तथा शक्ति संपन्न हो जाता है परंतु प्रगतिशीलता अपना मूल स्वभाव खो देती है। प्रगतिशीलता पूंजीवाद का इस्तेमाल नहीं करती पूंजीवाद ही प्रगतिशीलता एवं इसके पोषकों का इस्तेमाल कर लेता है। - भैरवजी का रचना संसार :-

उपन्यास :-

1) शोले - 1946
2) मशाल - 1948
3) गंगामैया - 1952
4) जंजीरे और नया आदमी - 1956 (बाद में यह उपन्यास बांदी, और आग और आँसू - 1982 नाम से प्रकाशित)
5) सत्ती मैया का चौरा - 1959
6) धरती - 1962
7) आशा - 1963
8) कालिन्दी - 1963
9) रम्भा - 1964
10) अन्तिम अध्याय - 1965
11) नौजवान - 1974
12) एक जिनियस की प्रेमकथा - 1963 (पहले यह उपन्यास "उसका मुजरिम" नाम से छपा)
13) बाप और बेटा - दो भाग
14) भाग्यदेवता
15) काशीनाथ
16) हवेली
17) मास्टरजी (प्रेस में)

कहानी संग्रह :-

1) मुहब्बत की राहें - 1945

2) फरिश्ता - 1946

3) बिगडे हुअे दिमाग - 1948

4) इन्सान - 1950

5) सितार के तार - 1951

6) बलिदान की कहानियाँ

7) मंजिल - 1951

8) महफिल - 1958

9) सपने का अंत - 1961

10) आँखों का सवाल - 1965

11) मंगली की टिकुली - 1982

12) आप क्या कर रहे हैं? - 1983

अन्य रचनाएँ :-

1) कसौटी - 1943 (एकांकी संग्रह)

2) चन्दबरदाई - 1967 नाटक

3) सैध्दांतिक विवाद - निबंध संग्रह

सम्पादित पुस्तकें :-

1) मित्र तथा अन्य कहानियाँ

2) भारत की आधुनिक श्रेष्ठ कहानियाँ

3) हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ

सम्पादित पत्रिकाएँ :-

1) माया

2) मनोहर कहानियाँ 1944-1953, 1975-1980

3) कहानी - 1955-1960

4) नई कहानी - 1960 - 1962

5) समारंभ - (दो अंक)

6) कमल - सम्पादक मण्डल में

अनुवाद :-

1) हिज एक्सेलेन्सी : दोस्तावस्की

2) मालवा : गोर्की

3) माँ : गोर्की

4) कन्दीद : बालतेयर

5) कर्कशा : शेक्सपीअर

6) डोरी एण्ड ग्रे : ऑस्करवाइन्ड

7) चेरी का बगिया : चेखव

8) हमारे लेनिन

9) अजेय विअत्तनाम : उत्पल दत्त

10) मालती माधव - भवभूति (उपन्यास में रूपान्तर)

निष्कर्ष :-

भैरवप्रसाद गुप्तजी का जन्म एक साधारण मध्यवित्त परिवार में हुआ। बचपन से ही उन्हें खेलकुद में रूचि और वर्ग वैषम्य के प्रति अनास्था रही। बी.ए. की उपाधि प्राप्ति के बाद वे राष्ट्रभाषा हिन्दी प्रचार कार्य में जुट गये और हिन्दी के प्रति प्रेम रखने लगे। उनकी प्रथम पत्नी "प्रेमकला" की मृत्यु से उनके पूरे जीवन को एवं साहित्य-सृजन को नया मोड मिला। सन 1948 में वे भारतीय साम्यवादी दल में प्रविष्ठ हुअे, सन 1962 में भारतीय साम्यवादी दल के विघटन के पश्चात वे मार्क्सवादी दल में सम्मिलित हुअे। सन 1945 में इलाहाबाद शाखा प्रगतिशील लेखक संघ शाखा के मंत्री, सन 1949 में प्रगतिशील लेखक संघ के सचिव सन 1948 में उत्तरप्रदेश पत्रकार संघ की कार्यकारिणी के सदस्य बने राजनीतिक गतिविधियों का उनके साहित्य सृजन पर हुआ प्रभाव भी लक्षित होता है।

हिन्दी भाषा प्रचार-प्रसार कार्य में उनका महत्वपूर्ण योगदान लक्षित होता है। सन 1939 से 1942 तक के कालखंड में उन्होंने हिन्दी प्रचार सभा का काम किया और त्रिचनापल्ली रेडिओं से "लेसन्स इन हिन्दुस्तानी" का कार्यक्रम बडी लगन से चलाया इतना ही नहीं राजगोपालाचार्य जैसे नेताओं को हिन्दी सिखाने का काम भी किया।

भैरवप्रसादजी के कृतित्व को देखने पर लगता है कि वे बहुमुखी प्रतिभा के लेखक रहे हैं। उन्होंने उपन्यास, कहानी, नाटक, लेख, अनुवाद, कविता सभी विधाओं पर चतुराई से कलम चलाई है। वे प्रमुख रूप से कथाकार (उपन्यासकार) के रूप में लक्षित होते हैं। संपादन कार्य में भी आपका बडा योगदान महसूस होता है। इन्होंने अन्य रचनाकारों को भी दिशा-दिग्दर्शन करने का प्रभावी काम किया है।

भैरवप्रसादजी प्रकृती से स्वाभिमानी, निष्कपट, सरल स्वभाव के, मस्तमौला आनंदी जीव, सिध्दांतों के कट्टर समर्थक, प्रलोभनों के और अवसरवादिता के विरोध, सहयोगी मित्र, विनोदी स्वभाव के, अजनबी से भी आत्मियता के दर्शन करा देनेवाले, अपने लेखन के प्रति सदैव जागरूक रहनेवाले आलोचकों की फिक्र न करनेवाले, मेधावी, परिश्रमी, अपने सिध्दांतों के निष्ठावंत पालनकर्ता, सिध्दांतों के रक्षक, पत्रव्यवहार में तत्पर, नयी कहानी अंदोलन के प्रवर्तक, प्रतिष्ठित कथाकार, आजादी के बाद के साहित्यिक अंदोलन के सक्रिय रचनाकार लेखकीय चेतना और संवेदना को क्रान्तिकारी मोड देनेवाले लेखक, चेतना सागर की प्रचंड लहर, जनवादी कथाकार, सामान्य जन को कथा में केंद्रियता देनेवाला रचनाकार, आंचलिकता की सीमाओं को तोडकर खास जमीन की तलाश करनेवाले रचनाकार, सर्वहारा बोध के लेखक, सर्वहारा के हिमायती, साहित्य में जीवन की अनुभूतियों को वास्तवता का चोला पहनानेवाले कथाकार, सामंति पूंजीपतियों के गैरमानवी आचरण के चतुर चितेरा, जनवादी लेखक संघ के अध्यक्ष आदि रूप में भैरवप्रसाद जी हमारे सामने आते है।

अपने सिध्दांतों के सामने किसी की भी खातिर न करनेवाले भैरवजी पर उनके ही मित्रों ने असहयोगी व्यक्ति कहकर उनकी आलोचना की परंतु इसकी तरफ उन्होंने दुर्लक्ष किया।

भैरवप्रसादजी की रहन-सहन अत्यंत्कि सादगीपूर्ण रही है। वे खद्दरधारी हैं। उनके व्यक्तित्व पर उत्तर प्रदेश के ग्रामांचलिकता की छाप स्पष्ट हावी हुअी लक्षित होती है। उनका पूरा व्यक्तित्व एवं वेष-भूषा सादगी का प्रतीक है। उनकी सादगीपूर्ण जिंदगी का प्रभाव उनके परिवार के सभी सदस्यों पर भी लक्षित होता है।

इनके परिवार के भाई स्वतंत्रता संग्राम से संबंधित थे। प्रतिकूल पारिवारिक परिस्थिति में उन्होंने जीवन के अनेक मोड देखे हैं। स्पष्ट है कि गुप्त जी मार्क्सवादी प्रतिबध्दता के लेखक लक्षित होते है।

हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी पर उनका जबरदस्त अधिकार है। अंग्रेजी के माध्यम से उन्होंने मार्क्सवादी एवं अन्य पश्चिमी साहित्य का अध्ययन किया है। उन्होंने चीनी साहित्य का अध्ययन भी अंग्रेजी के माध्यम से किया। उनके लेखन पर कार्ल मार्क्स, एंगल्स, लेनिन, स्टैलिन और माओ-त्से-तुंग के विचारों का गहरा प्रभाव लक्षित होता है। वे गोर्की, चेखव तथा प्रेमचंदजी के साहित्य से विशेष प्रेरित लगते हैं।

लगता है कि लेखक भैरवजी सर्वहारा के दर्शन मार्क्सवाद में तलाशते हैं और सर्वहारा वर्ग में क्रांति का निर्माण करने के लिए ही लिखते हैं। वे विकासशील वर्ग के लिए लिखना ही अपना कर्तव्य मानते हैं। वे खुद को जनता के निकट ले जाकर उनके संघर्षों में शरीक होना चाहते हैं। वे सामान्य जनता की तरह जीवनयापन करने लगते हैं। लोभ के चक्कर में पडकर अच्छे और चमकीले जीवन की

आकांक्षाओं से जनविरोधी शक्तियों का साथ नहीं देते हैं। वे सदा क्रान्तिकारी शक्तियों के पक्षधर रहे है। यहाँ लेखक की सर्वहारा के प्रतिबध्दता सहज ही स्पष्ट होती है।

भैरवजी के कृतित्व में हमें भैरवजी के औपन्यासिक विषयों के विविध आयाम, उनके पात्रों की प्रगतिवादी विचारधारा, सामंति-पूंजीवादी व्यवस्था में होनेवाला नारी शोषण, सर्वहारा वर्ग की आभावग्रस्तता, स्त्री-पुरूष संबंधों के विविधमुखी आयाम, सामंत एवं पूंजीपतियों की नैतिक टूटनशीलता, राजनीतिक भ्रष्टाचार पर व्यंग आदि बातें लक्षित होती है। भैरवजी ने आधुनिक हिन्दी उपन्यास साहित्य में एक सुविख्यात प्रगतिवादी रचनाकार लगते हैं। उन्होंने शोषण के एवं वर्ग-संघर्ष के विविध आयामों पर कुशलता के साथ लेखनी चलाकर हिन्दो उपन्यास साहित्य को गरीमामयी बनाया है। कहानी, नाटक, एकांकी, निबंध, अनुवाद आदि विधाओं में सफलता के साथ लिखाते हुअे भी उन्होंने उपन्यासकार के रूप में ख्याति प्राप्त की है। उनकी अनेक औपन्यासिक रचनाएँ हिन्दी साहित्य में बहुचर्चित रही है। भैरवजी प्रगतिवादी रचनाधर्मी कथाकार, दृढ एवं साफ चिंतन दृष्टि और स्पष्टवादी लगते हैं। बचपन से आभावों से ग्रस्त भैरवजी ने अपने उपन्यासों में किसान-मजदूरों का खुलकर चित्रण किया हुआ लक्षित होता हैं। राजनीति में व्याप्त भ्रष्टाचार, जमीदारों, पुलिसों, सामंतों द्वारा होनेवाले अन्यायों के खिलाफ उन्होंने निर्भिकता के साथ विरोध किया है यह भी यहाँ स्पष्ट होता है। सचमुच भैरवजी का व्यक्तित्व भी 'भैरवी स्वर' जैसे लगता है। भैरवजी के मतानुसार - 'मेरी सारी औपन्यासिक रचनाएँ किसी-न-किसी अर्थ में प्रगतिवादी है। यहाँ तक की मैं आरंभ से ही प्रगतिवादी लेखक संघ से संबध्द रहा हूँ।'[2]

- - -

संदर्भ :-

1. डॉ. इंदु प्रकाश पाण्डेय - हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में जीवन सत्य, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली प्र.सं. 1979 पृ. 279-80
2. भैरवप्रसाद गुप्त - सती मैया का चौरा, निलाम प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र.सं. 1959 पृ.124
3. दि. 3 अप्रैल 1992 के लेखक के साथ किये हुअे पत्राचार से उद्धृत
4. दि. 12 अगस्त 1975 को विष्णु प्रभाकरजी ने लेखक के नाम लिखे गये एक पत्र का अंश।
5. संपादक - विद्याधर शुक्ल - भैरवप्रसाद गुप्त व्यक्ति और रचनाकार, प्र.सं. 1988, प्रभा.प्रका. इलाहाबाद, मुखपृष्ठ
6. वही, मुखपृष्ठ
7. वही, मलपृष्ठ
8. वही, मलपृष्ठ
9. संपादक - विद्याधर शुक्ल, भैरवप्रसाद गुप्त व्यक्ति और रचनाकार, प्रभा प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र.सं. 1988, पृ.क्र. 77
10. डॉ. अरूणा चतुर्वेदी - गांधी विचारधारा और हिन्दी उपन्यास, कल्पकार प्रकाशन, लखनऊ, प्र.सं. 1983, पृ. 232-233
11. भैरवप्रसाद गुप्त "धरती", धारा प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वि.सं. 1975, पृ. 83
12. वही - पृ. 589
13. वही - पृ. 91
14. वही - पृ. 149
15. वही - पृ. 149-50
16. वही - पृ. 249
17. वही - पृ. 250
18. वही - पृ. 182
19. वही - पृ. 492
20. भैरवप्रसाद गुप्त - "अन्तिम अध्याय" धारा प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वि.सं. 1975, पृ. 404
21. भैरवजी के 30 अप्रैल - 1992 के पत्र से उद्धृत

0000